घोषणा-पत्र

मैं आशीष कुमार एतद् द्वारा प्रतिज्ञापूर्वक घोषणा करता हूँ कि एम. फिल., **फिल्म अध्ययन (नाट्यकला एवं फिल्म अध्ययन विभाग, सृजन विद्यापीठ),** सत्र : 2013-14 की उपाधि के लिए पाठ्यक्रम संबंधी आवश्यकता की आंशिक परिपूर्ति हेतु **'मधुर भंडारकर की फिल्मों में स्त्री की दुनिया' (The world of women in Madhur Bhandarkar's film)** विषय पर प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध मेरा मौलिक कार्य है तथा मेरे संज्ञान में इसे अंशत या पूर्णत: इस विश्वविद्यालय या किसी अन्य संस्थान में प्रस्तुत नहीं किया गया है।

(आशीष कुमार)
एम. फिल., फिल्म अध्ययन
सत्र : 2013-14
पंजी. सं. 2013/07/204/001
म. गां. अ. हि. वि. वि., वर्धा

दिनांक : 15/04/2014
स्थान : वर्धा

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya

(संसद व्दारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय
(A Central University established by Parliament by Act No. 3 of 1997)

ज्ञान शांति मैत्री

नाट्यकला एवं फिल्म अध्ययन विभाग

Department of Dramatics and Film Studies

प्रो. सुरेश शर्मा

अधिष्ठाता : सृजन विद्यापीठ
अध्यक्ष : नाट्यकला एवं फिल्म अध्ययन विभाग

मो. 08275410122
स्थान : वर्धा

दिनांक : 15/04/2014

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री आशीष कुमार द्वारा एम. फिल., **फिल्म अध्ययन (नाट्यकला एवं फिल्म अध्ययन विभाग, सृजन विद्यापीठ),** सत्र : 2013-14 की उपाधि के लिए पाठ्यक्रम संबंधी आवश्यकता की आंशिक परिपूर्ति हेतु **'मधुर भंडारकर की फिल्मों में स्त्री की दुनियाँ' (The world of women in Madhur Bhandarkar's film)** विषय पर प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध मेरे निर्देशन में पूर्ण किया गया है।

मेरे संज्ञान में यह इनका मौलिक एवं स्वतंत्र कार्य है तथा इसे अंशत या पूर्णत: इस विश्वविद्यालय या किसी अन्य संस्थान में किसी उपाधि हेतु प्रस्तुत नहीं किया गया है।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध को प्रमाणित करते हुए मूल्यांकन हेतु अग्रेसित किया जाता है।

(प्रो० सुरेश शर्मा)

विशेष आभार

प्रो. सुरेश शर्मा

अधिष्ठाता सृजन विद्यापीठ (म. गां. अ. हि. वि. वि., वर्धा)

डॉ. ओम प्रकाश भारती (एशोसिएट प्रोफेसर, म. गां. अ. हि. वि. वि., वर्धा)

प्रो. शंभु गुप्त, अध्यक्ष, स्त्री-अध्ययन विभाग (म. गां. अ. हि. वि. वि., वर्धा)

सत्यम कुमार सिंह, (सहायक प्रोफेसर, महात्मा गांधी फ्यूजीगुरूजी शांति अध्ययन केंद्र, म. गां. अ. हि. वि. वि., वर्धा)

डॉ. मिथिलेश कुमार (सहायक प्रोफेसर, महात्मा गांधी फ्यूजीगुरूजी शांति अध्ययन केंद्र, म. गां. अ. हि. वि. वि., वर्धा)

पवन कुमार, निजी सचिव, प्रतिकुलपति कार्यालय (म.गां. अ. हि. वि. वि., वर्धा)

शोमा ए. चटर्जी, स्वतंत्र फिल्म-समीक्षक, कोलकाता

कंचन शेण्डे, लाइब्रेरी असिस्टेंट, स्त्री-अध्ययन विभाग (म. गां. अ. हि. वि. वि., वर्धा)

अरविन्द कुमार उपाध्याय, शोधार्थी, साहित्य विभाग (म. गां. अ. हि. वि. वि., वर्धा)

आनंद एस., शोधार्थी, साहित्य विभाग (म. गां. अ. हि. वि. वि., वर्धा)

धीरेन्द्र कुमार सिंह, शोधार्थी, नाट्यकला एवं फिल्म-अध्ययन विभाग (म. गां. अ. हि. वि. वि., वर्धा)

भागवत प्रसाद पटेल, शोधार्थी, नाट्यकला एवं फिल्म-अध्ययन विभाग (म. गां. अ. हि. वि. वि., वर्धा)

राजकुमार, शोधार्थी, स्त्री-अध्ययन विभाग (म. गां. अ. हि. वि. वि., वर्धा)

श्रीमती चन्द्रकला देवी (माई)

श्री हरिहर सिंह (बाबू जी)

डॉ. आलोक कुमार सिंह (भईया), सहायक कुलसचिव, निम्स यूनिवर्सिटी, जयपुर

पंकज कुमार सिंह (भईया), अभियंता, विप्रो टेक्नॉलॉजी, बैंगलोर

श्रीमती बबीता सिंह एवं सुधा सिंह(भाभी)

अनुक्रम

पृ.सं.

भूमिका **01-06**

प्रथम अध्याय : मधुर भंडारकर: संक्षिप्त परिचय **07-13**

द्वितीय अध्याय : नारीवादी फिल्म-सिद्धांत (पुनरावलोकन) **14-34**

- पश्चिम में नारीवादी फिल्म-समीक्षा का उदय 19-25
- भारत में नारीवादी फिल्म-समीक्षा 26-34

तृतीय अध्याय : हिंदी सिनेमा में स्त्री की दुनियाँ(एतिहासिक-परिदृश्य) **35-107**

- सन् 1913-1939 40-45
- सन् 1940-1949 45-50
- सन् 1950-1959 51-57
- सन् 1960-1969 58-64
- सन् 1970-1979 64-73
- सन् 1980-1989 73-88
- सन् 1990-1999 88-107

चतुर्थ अध्याय : मधुर भंडारकर की फिल्मों (चयनित) का अध्ययन एवं विश्लेषण (नारीवादी- दृष्टिकोण) **108-143**

1. चाँदनी बार (2001ई.) 109-120
2. सत्ता (2003 ई.) 120-126
3. पेज थ्री (2005 ई.) 127-131
4. कारपोरेट (2006 ई.) 131-134
5. फैशन (2008 ई.) 134-138
6. हीरोइन (2012 ई.) 138-143

उपसंहार **144-151**

परिशिष्ट **152-155**

संदर्भ ग्रंथ सूची **156-162**

भूमिका

कार्ल मार्क्स ने अपने द्वंद्वात्मक-भौतिकवाद के सिद्धांत में बताया है- "हर विकासशील वस्तु अपने भीतर अपने प्रतिपक्ष को समाहित किए हुए होती है, जो इसे पूर्व स्थिति में नहीं रहने देता। पक्ष और प्रतिपक्ष का पारस्परिक-संघर्ष भीतर ही भीतर चलता रहता है जब तक अंतर्विरोध शांत नहीं हो जाते और वस्तु एक नए गुणात्मक विकास को सूचित नहीं करने लगती. इस गुणात्मक विकास की स्थिति में आने के उपरांत वस्तु में निहित अंतर्विरोधपुनः एक नए रूप में आरंभ हो जाते हैं यही क्रम चलता रहता है"[1] यदि इस सिद्धांत के नजरिए से हिंदी-सिनेमा में स्त्री की दुनियां को देखें तो पाते हैं कि जब दादा साहेब फाल्के 'राजा हरिश्चंद्र' (1913) बना रहे थे तब स्त्री-पात्र की भूमिका के लिए कोई भी महिला नहीं मिली थी। लेकिन आज सिनेमा में स्त्री की स्थिति वही नहीं है जो उस समय थी। आज न केवल स्त्री-प्रधान फिल्में बन रही है बल्कि सिनेमा से जुड़े हर पक्ष पर महिलाओं का दखल भी पहले से ज्यादा दिख रहा है।

अभी-अभी भारतीय सिनेमा ने अपनी 100 वीं वर्षगांठ मनाया है किंतु अभी भी अधिकांश हिंदी-फिल्में नायक प्रधान होती हैं और नायकत्व उनकी शारीरिक शक्ति में निहित होता है। यह शक्ति खलनायक का दमन करने और स्त्री-पात्र की रक्षा करने के लिए है। नायक (पुरुषों) द्वारा रक्षित होकर स्त्रियाँ (नायिका) उनका मन बहलाती हैं, उनकी यौन क्षुधा शांत करती हैं और उनके लिए वारिस पैदा करती हैं। जाहिर है कि पुरुष समाज द्वारा निर्धारित इन भूमिकाओं के आस-पास फिल्मों में स्त्री-जीवन का चित्रण होता है।

लेकिन कम ही सही लगातार ऐसी फिल्में बनती रही हैं जो स्त्रियों को उनकी परंपरागत भूमिकाओं से परे जाकर देखने का प्रयास करती है। इस तरह का प्रयास करने वाली फिल्मों में भी वैचारिक अंतर्विरोध होते हैं। यदि किसी एक मसले में वे स्त्री-अधिकारों का समर्थन कर रही होती है तो

---

[1] अमरनाथ- हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 177

किसी दूसरे मसले में वे स्त्री-पराधीनता के पक्ष में खड़ी नजर आ सकती है। मधुर भंडारकर द्वारा निर्देशित-फिल्मों (चयनित) को भी इस श्रेणी में रखा जा सकता है।

स्त्री-स्वाधीनता और उसके अधिकारों को केंद्रीय-मुद्दा बनाने वाली फिल्मों को फिल्म-समीक्षक जवरीमल पारख ने निम्नलिखित श्रेणियों में बाँटा है-

- वैसी फिल्में जिनमें स्त्रियाँ (नायिका), पुरुष (नायक) की अनुपस्थिति में पूरे परिवार का पालन-पोषण अकेले करती हैं। 'मदर इंडिया' इस तरह की फिल्मों का सर्वोत्तम उदाहरण है, तो भिन्न परिवेश और अलग ढंग से दिखाई गई 'चाँदनी बार' को भी इस श्रेणी में रखा जा सकता है।

- वैसी फिल्में जहाँ नायिका घर की चार दीवारी में रहने से इंकार करती है और अपने जीवन को सार्थक बनाने का मार्ग स्वयं खोजती है। 'सुबह' और 'अस्तित्व' इस तरह की प्रतिनिधिक फिल्म है।

- वैसी फिल्में जहाँ नायिका अपने ऊपर होने वाल उत्पीड़न का मुकाबला स्वयं करती है। 'मिर्च मसाला'और 'मृत्युदण्ड' इस तरह की फिल्मों के उदाहरण हैं।

- वैसी फिल्में जिनमें नायिका, त्याग, पतिव्रत्य और सेवा जैसे मूल्यों को मानने से इंकार करती है और यौन-भावनाओं के प्रति अपराध बोध से ग्रस्त नहीं होती। 'फायर' और 'सत्ता' इस तरह की फिल्मों के उदाहरण हैं।

- पाँचवी तरह की फिल्में वे हैं जिनमें नायिका अपने बलबूते वह मुकाम हासिल करती हैं जो पुरुष-प्रधान इस समाज में उन्हें कभी आसान नहीं रहा। 'आँधी','गॉडमदर', 'सत्ता' इस श्रेणी की फिल्में हैं।

उपरोक्त श्रेणियों से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि हिंदी-सिनेमा ने स्त्री की जो दुनियाँ आम दर्शक के सामने प्रस्तुत की है उनमें अधिकांश का उद्देश्य स्त्री को दोयम दर्जे के रूप में दिखाना ही है। लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं है कि स्त्री-जीवन की सच्चाइयों को हिंदी-सिनेमा ने नहीं दिखाया है। जैसा कि हम सब जानते हैं कि चौथे दशक से ही ऐसी फिल्में बनती रही हैं जिनमें स्त्री की दुनिया के यथार्थ को प्रगतिशील दृष्टिकोण के साथ देखा समझा गया था। बाद में यद्यपि इस परंपरा में थोड़ी कमी आई किंतु यह पूर्णत: अवरूद्ध कभी नहीं हुआ। हिंदी के अलावे भी विशेषत: सत्यजीत राय, ऋत्विक घटक, मृणालसेन, अडुर गोपालाकृष्णन, जी. अरविंदन, गिरीश कसरावल्ली, जहाँ बरूआ, नीरदमहापात्र आदि फिल्मकारों ने इस दृष्टि से कुछ महत्वपूर्ण फिल्मों का निर्माण किया।

1969 ई. में हिंदी-सिनेमा की नई धारा के आगमन के साथ ऐसी फिल्मों का निर्माण शुरू हुआ जिसमें स्त्री-जीवन की जटिलता को गहराई से समझने का प्रयास किया गया। इनमें श्याम बेनेगल, सईद मिर्जा, मनी कौल, कुमार साहनी, एम.एस. सत्थ्यु, सई परांजपे , जब्बार पटेल, गोविंद निहलानी, महेश भट्ट, सागर सरहदी, शेखर कपूर आदि निर्देशकों की फिल्मों को उदाहरण स्वरूप लिया जा सकता है।

भारत में उदारीकरण के आगमन के साथ ही 1990 ई. तक आते-आते हिंदी-सिनेमा के नई धारा के सभी फिल्मकार या तो व्यावसायिक फिल्मों की तरफ अपना रूख कर चुके थे अथवा उन्होंने फिल्म बनाना छोड़ दिया था। नतीजा यह हुआ कि बाजार के दबाव के कारण या चाहे कारण जो भी हो उसके बाद की सारी फिल्मों में स्त्रियों का चित्रण एक उपभोग की वस्तु अर्थात् माल या उत्पाद (commodity) के रूप में होने लगा। लगभग दस वर्षों तक हिंदी-सिनेमा में छिट-पुट ढंग से ऐसी फिल्मों का निर्माण होता रहा जिनमें स्त्रियों की छवि को सकारात्मक ढंग से दिखाने की कोशिश की गई, नहीं तो अधिकांश फिल्मों की स्त्रियों की रूढ़ (stereotype) छवि ही हमें देखने को मिलती है।

ऐसी समय में ही मधुर भंडारकर, 'चाँदनी बार' (2001), का निर्देशन करते हैं और अपने इस फिल्म के माध्यम से भारतीय जीवन में व्याप्त वेश्या वृत्ति/बार-बालाओं के जीवन के यथार्थ से दर्शकों

को रू-ब-रू कराते हैं। 'चाँदनी बार' (2001) से 'हीरोइन' (2012) तक वे दस फिल्मों का निर्माण करते हैं जिनमें छह फिल्मों में प्रोटागोनिस्ट की भूमिका में स्त्री/महिला पात्र ही हैं।

Women in India cinema: Fictional constructs' नामक आलेख में वृंदा माथुर लिखती हैं- "The present portrayal of women on screen merely perpetrates the Indian cultural devaluation theory. I am a girl,therefore bad and therefore destined to suffer is the message that is sent forth in movie after movie. This space between a strong woman real life and her portrayal on celluloid needs to be negotiated and the positive ambience fore-grounded. Indian cinema has a double role to play in shaping the mindset of its people. It is loved greatly and has tremendous mass appeal but that is not enough. It must also set the stage for social change. Can woman be redefined and recategorized in to 'I am a woman, therefore strong, therefore invincible',only then can the women characters come alive on screen. Until then they shall continue to be what they are mere fictional constructs and one dimensional figures who are distant from the ordinary,real life women."[2] '

उपर्युक्त संदर्भ में वृंदा माथुर कहती हैं कि हिंदी-सिनेमा फिल्म-दर-फिल्म अपनी नायिकाओं के माध्यम से यह संदेश देता है कि-'चूँकि मैं स्त्री/महिला हूँ इसलिए बुरी हूँ और इसलिए मेरी नियति है कष्ट झेलना।' स्त्रियों के वास्तविक जीवन और फिल्मी पर्दों पर दिखाए जाने वाले जीवन में जो अंतर है वह आम-दर्शक के मन एवं मस्तिष्क दोनों को प्रभावित करता है जिससे पुरुष-श्रेष्ठता की धारणा को बल मिलता है तथा स्त्री को दोयम दर्जे की नागरिक बनाए रखने की कोशिश को भी बल मिलता है।

---

[2] Jain Jasbir, Rai Sudha (ed. Rai Sudha); Films and feminism: Essays in the Indian cinema, Rawod publications, Jaipur, p. 70

आगे वृंदा कहती हैं कि क्या एक स्त्री को कभी हिंदी-सिनेमा इस रूप में श्रेणीबद्ध तथा पुन: परिभाषित कर सकती है कि- 'चूँकि मैं स्त्री/महिला हूँ, इसलिए मैं विशिष्ट हूँ और इसलिए अजेय भी'?

वृंदा माथुर के आलेख 'Women in India Cinema : Fictional Constructs' को ही पढ़ते हुए मेरे दिमाग में यह विचार कौंधा कि मधुर भंडारकर की फिल्मों में नारीवादी-दृष्टिकोण से शोध संभव है। एम.फिल. कोर्स-वर्क के दौरान विभागाध्यक्ष प्रो. सुरेश शर्मा जी एवं अन्य मित्रों से गहन विचार-विमर्श के बाद यह विषय निकलकर सामने आया।

प्रथम अध्याय में निर्देशक मधुर भंडाकर का संक्षिप्त-परिचय एवं उनकी फिल्मोग्राफी की प्रस्तुति की गई है।

द्वितीय अध्याय 'नारीवादी फिल्म-सिद्धांत' (पुनरावलोकन) है जिसके अंतर्गत पश्चिम में किस प्रकार नारीवादी फिल्म-समीक्षा का उदय हुआ एवं कौन से समीक्षक ने क्या लिखा या कहा है इसकी पड़ताल की गई है। साथ ही साथ भारत में 'नारीवादी फिल्म-समीक्षा' की शुरूआत एवं विकास किस प्रकार हुआ इस पर भी प्रकाश डाला गया है।

तीसरा अध्याय 'हिंदी-सिनेमा में स्त्री की दुनिया का ऐतिहासिक पड़ताल' का है, जिसके अंतर्गत 1913 ई. से लेकर 2000 ई. तक की फिल्मों का विश्लेषण उस समय की राजनैतिक स्थिति एवं भावनात्मक वातावरण को ध्यान में रखते हुए करने की कोशिश की गई है। ऐतिहासिक अर्थ/महत्व (Historical significance), विषय-वस्तु (content), रूप (form) तथा शैली (style) को आधार के रूप में रखकर फिल्मों को व्याख्यायित करने की कोशिश की गई है। साथ ही साथ फिल्मों पर परिचर्चा के दौरान केंद्र में स्त्रियों का पारंपरिक-चित्रण (stereotypical representation) तथा चित्रण में आए विभिन्न बदलावों को रखा गया है।

अंतिम अध्याय यानि **चतुर्थ अध्याय** में मधुर भंडारकर द्वारा निर्देशित फिल्मों (चयनित) का अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है। इस विश्लेषण के केंद्र में नारीवादी-दृष्टिकोण को स्थान दिया गया है।

कार्ल मार्क्स ने अपने द्वंद्वात्मक-भौतिकवाद के सिद्धांत में बताया है- "हर विकासशील वस्तु अपने भीतर अपने प्रतिपक्ष को समाहित किए हुए होती है, जो इसे पूर्व स्थिति में नहीं रहने देता। पक्ष और प्रतिपक्ष का पारस्परिक-संघर्ष भीतर ही भीतर चलता रहता है जब तक अंतर्विरोध शांत नहीं हो जाते और वस्तु एक नए गुणात्मक विकास को सूचित नहीं करने लगती. इस गुणात्मक विकास की स्थिति में आने के उपरांत वस्तु में निहित अंतर्विरोधपुनः एक नए रूप में आरंभ हो जाते हैं यही क्रम चलता रहता है"[3] यदि इस सिद्धांत के नजरिए से हिंदी-सिनेमा में स्त्री की दुनियां को देखें तो पाते हैं कि जब दादा साहेब फाल्के 'राजा हरिश्चंद्र' (1913) बना रहे थे तब स्त्री-पात्र की भूमिका के लिए कोई भी महिला नहीं मिली थी। लेकिन आज सिनेमा में स्त्री की स्थिति वही नहीं है जो उस समय थी। आज न केवल स्त्री-प्रधान फिल्में बन रही है बल्कि सिनेमा से जुड़े हर पक्ष पर महिलाओं का दखल भी पहले से ज्यादा दिख रहा है।

अभी-अभी भारतीय सिनेमा ने अपनी 100 वीं वर्षगांठ मनाया है किंतु अभी भी अधिकांश हिंदी-फिल्में नायक प्रधान होती हैं और नायकत्व उनकी शारीरिक शक्ति में निहित होता है। यह शक्ति खलनायक का दमन करने और स्त्री-पात्र की रक्षा करने के लिए है। नायक (पुरुषों) द्वारा रक्षित होकर स्त्रियाँ (नायिका) उनका मन बहलाती हैं, उनकी यौन क्षुधा शांत करती हैं और उनके लिए वारिस पैदा करती हैं। जाहिर है कि पुरुष समाज द्वारा निर्धारित इन भूमिकाओं के आस-पास फिल्मों में स्त्री-जीवन का चित्रण होता है।

लेकिन कम ही सही लगातार ऐसी फिल्में बनती रही हैं जो स्त्रियों को उनकी परंपरागत भूमिकाओं से परे जाकर देखने का प्रयास करती है। इस तरह का प्रयास करने वाली फिल्मों में भी वैचारिक अंतर्विरोध होते हैं। यदि किसी एक मसले में वे स्त्री-अधिकारों का समर्थन कर रही होती है तो

---

[3] अमरनाथ- हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 177

किसी दूसरे मसले में वे स्त्री-पराधीनता के पक्ष में खड़ी नजर आ सकती है। मधुर भंडारकर द्वारा निर्देशित-फिल्मों (चयनित) को भी इस श्रेणी में रखा जा सकता है।

स्त्री-स्वाधीनता और उसके अधिकारों को केंद्रीय-मुद्दा बनाने वाली फिल्मों को फिल्म-समीक्षक जवरीमल पारख ने निम्नलिखित श्रेणियों में बाँटा है-

- वैसी फिल्में जिनमें स्त्रियाँ (नायिका), पुरुष (नायक) की अनुपस्थिति में पूरे परिवार का पालन-पोषण अकेले करती हैं। 'मदर इंडिया' इस तरह की फिल्मों का सर्वोत्तम उदाहरण है, तो भिन्न परिवेश और अलग ढंग से दिखाई गई 'चाँदनी बार' को भी इस श्रेणी में रखा जा सकता है।

- वैसी फिल्में जहाँ नायिका घर की चार दीवारी में रहने से इंकार करती है और अपने जीवन को सार्थक बनाने का मार्ग स्वयं खोजती है। 'सुबह' और 'अस्तित्व' इस तरह की प्रतिनिधिक फिल्म है।

- वैसी फिल्में जहाँ नायिका अपने ऊपर होने वाल उत्पीड़न का मुकाबला स्वयं करती है। 'मिर्च मसाला'और 'मृत्युदण्ड' इस तरह की फिल्मों के उदाहरण हैं।

- वैसी फिल्में जिनमें नायिका, त्याग, पतिव्रत्य और सेवा जैसे मूल्यों को मानने से इंकार करती है और यौन-भावनाओं के प्रति अपराध बोध से ग्रस्त नहीं होती। 'फायर' और 'सत्ता' इस तरह की फिल्मों के उदाहरण हैं।

- पाँचवी तरह की फिल्में वे हैं जिनमें नायिका अपने बलबूते वह मुकाम हासिल करती हैं जो पुरुष-प्रधान इस समाज में उन्हें कभी आसान नहीं रहा। 'आँधी','गॉडमदर', 'सत्ता' इस श्रेणी की फिल्में हैं।

उपरोक्त श्रेणियों से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि हिंदी-सिनेमा ने स्त्री की जो दुनियाँ आम दर्शक के सामने प्रस्तुत की है उनमें अधिकांश का उद्देश्य स्त्री को दोयम दर्जे के रूप में दिखाना ही है। लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं है कि स्त्री-जीवन की सच्चाइयों को हिंदी-सिनेमा ने नहीं दिखाया है। जैसा कि हम सब जानते हैं कि चौथे दशक से ही ऐसी फिल्में बनती रही हैं जिनमें स्त्री की दुनिया के यथार्थ को प्रगतिशील दृष्टिकोण के साथ देखा समझा गया था। बाद में यद्यपि इस परंपरा में थोड़ी कमी आई किंतु यह पूर्णत: अवरूद्ध कभी नहीं हुआ। हिंदी के अलावे भी विशेषत: सत्यजीत राय, ऋत्विक घटक, मृणालसेन, अडुर गोपालाकृष्णन, जी. अरविंदन, गिरीश कसरावल्ली, जहाँ बरूआ, नीरदमहापात्र आदि फिल्मकारों ने इस दृष्टि से कुछ महत्वपूर्ण फिल्मों का निर्माण किया।

1969 ई. में हिंदी-सिनेमा की नई धारा के आगमन के साथ ऐसी फिल्मों का निर्माण शुरू हुआ जिसमें स्त्री-जीवन की जटिलता को गहराई से समझने का प्रयास किया गया। इनमें श्याम बेनेगल, सईद मिर्जा, मनी कौल, कुमार साहनी, एम.एस. सत्थ्यु, सई परांजपे , जब्बार पटेल, गोविंद निहलानी, महेश भट्ट, सागर सरहदी, शेखर कपूर आदि निर्देशकों की फिल्मों को उदाहरण स्वरूप लिया जा सकता है।

भारत में उदारीकरण के आगमन के साथ ही 1990 ई. तक आते-आते हिंदी-सिनेमा के नई धारा के सभी फिल्मकार या तो व्यावसायिक फिल्मों की तरफ अपना रूख कर चुके थे अथवा उन्होंने फिल्म बनाना छोड़ दिया था। नतीजा यह हुआ कि बाजार के दबाव के कारण या चाहे कारण जो भी हो उसके बाद की सारी फिल्मों में स्त्रियों का चित्रण एक उपभोग की वस्तु अर्थात् माल या उत्पाद (commodity) के रूप में होने लगा। लगभग दस वर्षों तक हिंदी-सिनेमा में छिट-पुट ढंग से ऐसी फिल्मों का निर्माण होता रहा जिनमें स्त्रियों की छवि को सकारात्मक ढंग से दिखाने की कोशिश की गई, नहीं तो अधिकांश फिल्मों की स्त्रियों की रूढ़ (stereotype) छवि ही हमें देखने को मिलती है।

ऐसी समय में ही मधुर भंडारकर, 'चाँदनी बार' (2001), का निर्देशन करते हैं और अपने इस फिल्म के माध्यम से भारतीय जीवन में व्याप्त वेश्या वृत्ति/बार-बालाओं के जीवन के यथार्थ से दर्शकों

को रू-ब-रू कराते हैं। 'चाँदनी बार' (2001) से 'हीरोइन' (2012) तक वे दस फिल्मों का निर्माण करते हैं जिनमें छह फिल्मों में प्रोटागोनिस्ट की भूमिका में स्त्री/महिला पात्र ही हैं।

Women in India cinema: Fictional constructs' नामक आलेख में वृंदा माथुर लिखती हैं- "The present portrayal of women on screen merely perpetrates the Indian cultural devaluation theory. I am a girl,therefore bad and therefore destined to suffer is the message that is sent forth in movie after movie. This space between a strong woman real life and her portrayal on celluloid needs to be negotiated and the positive ambience fore-grounded. Indian cinema has a double role to play in shaping the mindset of its people. It is loved greatly and has tremendous mass appeal but that is not enough. It must also set the stage for social change. Can woman be redefined and recategorized in to 'I am a woman, therefore strong, therefore invincible',only then can the women characters come alive on screen. Until then they shall continue to be what they are mere fictional constructs and one dimensional figures who are distant from the ordinary,real life women."[4] '

उपर्युक्त संदर्भ में वृंदा माथुर कहती हैं कि हिंदी-सिनेमा फिल्म-दर-फिल्म अपनी नायिकाओं के माध्यम से यह संदेश देता है कि-'चूँकि मैं स्त्री/महिला हूँ इसलिए बुरी हूँ और इसलिए मेरी नियति है कष्ट झेलना।' स्त्रियों के वास्तविक जीवन और फिल्मी पर्दों पर दिखाए जाने वाले जीवन में जो अंतर है वह आम-दर्शक के मन एवं मस्तिष्क दोनों को प्रभावित करता है जिससे पुरुष-श्रेष्ठता की धारणा को बल मिलता है तथा स्त्री को दोयम दर्जे की नागरिक बनाए रखने की कोशिश को भी बल मिलता है।

---

[4] Jain Jasbir, Rai Sudha (ed. Rai Sudha); Films and feminism: Essays in the Indian cinema, Rawod publications, Jaipur, p. 70

आगे वृंदा कहती हैं कि क्या एक स्त्री को कभी हिंदी-सिनेमा इस रूप में श्रेणीबद्ध तथा पुन: परिभाषित कर सकती है कि- 'चूँकि मैं स्त्री/महिला हूँ, इसलिए मैं विशिष्ट हूँ और इसलिए अजेय भी'?

वृंदा माथुर के आलेख 'Women in India Cinema : Fictional Constructs' को ही पढ़ते हुए मेरे दिमाग में यह विचार कौंधा कि मधुर भंडारकर की फिल्मों में नारीवादी-दृष्टिकोण से शोध संभव है। एम.फिल. कोर्स-वर्क के दौरान विभागाध्यक्ष प्रो. सुरेश शर्मा जी एवं अन्य मित्रों से गहन विचार-विमर्श के बाद यह विषय निकलकर सामने आया।

प्रथम अध्याय में निर्देशक मधुर भंडाकर का संक्षिप्त-परिचय एवं उनकी फिल्मोग्राफी की प्रस्तुति की गई है।

द्वितीय अध्याय 'नारीवादी फिल्म-सिद्धांत' (पुनरावलोकन) है जिसके अंतर्गत पश्चिम में किस प्रकार नारीवादी फिल्म-समीक्षा का उदय हुआ एवं कौन से समीक्षक ने क्या लिखा या कहा है इसकी पड़ताल की गई है। साथ ही साथ भारत में 'नारीवादी फिल्म-समीक्षा' की शुरूआत एवं विकास किस प्रकार हुआ इस पर भी प्रकाश डाला गया है।

तीसरा अध्याय 'हिंदी-सिनेमा में स्त्री की दुनिया का ऐतिहासिक पड़ताल' का है, जिसके अंतर्गत 1913 ई. से लेकर 2000 ई. तक की फिल्मों का विश्लेषण उस समय की राजनैतिक स्थिति एवं भावनात्मक वातावरण को ध्यान में रखते हुए करने की कोशिश की गई है। ऐतिहासिक अर्थ/महत्व (Historical significance), विषय-वस्तु (content), रूप (form) तथा शैली (style) को आधार के रूप में रखकर फिल्मों को व्याख्यायित करने की कोशिश की गई है। साथ ही साथ फिल्मों पर परिचर्चा के दौरान केंद्र में स्त्रियों का पारंपरिक-चित्रण (stereotypical representation) तथा चित्रण में आए विभिन्न बदलावों को रखा गया है।

अंतिम अध्याय यानि **चतुर्थ अध्याय** में मधुर भंडारकर द्वारा निर्देशित फिल्मों (चयनित) का अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है। इस विश्लेषण के केंद्र में नारीवादी-दृष्टिकोण को स्थान दिया गया है।

हिंदी-व्यावसायिक सिनेमा ने अपने मूक, टॉकी तथा वर्तमान डिजीटल विकासक्रम में जो एक महत्वपूर्ण उपलब्धि हासिल की है उसमें सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि सिनेमा की अपनी भाषा की उपलब्धि है। हिंदी-सिनेमा की अपनी भाषा की खास विशिष्टता उसके लोकप्रिय, सरल प्रतीक तथा बिंबों में छिपी है। भाषा की उपलब्धि एक खामोश उपलब्धि है जिसे कम ही रेखांकित किया गया है। भाषाई उपलब्धि एवं उसके परिवर्तनों से फिल्म में हुए प्रमुख विचलनों को देखा जा सकता है। सिनेमाई-भाषा के हिंदी-सिनेमा में दो प्रमुख अंतर हैं जिसे 'कंटेंट' और 'फार्म' दोनों में प्रभाव के रूप में देखा जा सकता है। इस परिवर्तन के पीछे की पृष्ठभूमि निश्चित रूप से समानांतर/न्यू वेव/नया सिनेमा से बनती है। नया सिनेमा की पृष्ठभूमि यूरोप में द्वितीय विश्वयुद्ध के हालात थे किंतु भारतीय पृष्ठभूमि कुछ अलग कही जा सकती है। नया सिनेमा के फिल्मकारों ने कैमरे, रोशनी, प्रतीक एवं बिंबों के इस्तेमाल में कई नए प्रयोग किए। इस प्रयोग ने सिनेमा की भाषा को गहराई प्रदान की साथ ही समाज के जटिलतम संबंधों को दर्शाने के लिए नए आयाम खोले।

इस नई भाषा ने समाज को देखने का नया दृष्टिकोण दिया साथ ही प्रचलित लोकप्रिय सिनेमा के स्थापित प्रतिमानों के प्रतिधारा और यथार्थ के स्वरूप को भी गढ़ा है। लोकप्रिय सिनेमा ने स्त्री की दुनिया को केंद्रीयता तो प्रदान की लेकिन उसके विभिन्न 'स्टीरियोटाइप्स' भी स्थापित किए। ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि व्यावसायिक/लोकप्रिय हिंदी-सिनेमा ने स्त्री की दुनिया को फिल्म-विषय बनाने में अनदेखी की है। सिनेमा की शुरूआत के साथ ही ऐसी फिल्मों का निर्माण होने लगा था जिन्हें समाज-सुधार की दृष्टि से महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। इन फिल्मों में धीरेन्द्र नाथ गांगुली की 'इंग्लैंड

रिटर्न'(1921), चंदूलाल शाह की 'टाइपिस्ट गर्ल' (1926), 'गुण सुंदरी' (1927), 'विश्व मोहिनी' (1929), 'बैरिस्टर्स वाइफ' (1936), मोहन भवनानी की 'मजदूर' (1934), काली प्रसाद घोष की 'शहर का जादू' (1934), फ्रैंज ऑस्टिन की 'अछूत कन्या' (1936), वी.शांताराम की 'दुनिया ना माने' (1937) को उदाहरण स्वरूप लिया जा सकता है। इन फिल्मों में 'अछूत कन्या' और 'दुनिया न माने' स्त्री-दृष्टि से अपने समय से बहुत आगे की फिल्में हैं।

"स्त्री-प्रश्न की सिनेमाई अभिव्यक्ति से जुड़े सवाल से मुखातिब तत्कालीन फिल्मकारों में परंपरा और आधुनिकता के बीच का द्वंद्व बहुत आसानी से देखा जा सकता है। जहाँ एक तरफ तो स्त्री को माँ, बेटी, बहन और पत्नी के परंपरागत रूप में दिखाने की कोशिश की गई तो दूसरी तरफ पितृसत्तात्मक-मूल्यों पर आघात करते हुए स्त्री चरित्र को भी दिखाने की कोशिश की गई है। इसी क्रम में 'औरतों से सावधान' (1929), 'औरत का बदला'(1930), 'एक आदर्श औरत' (1930), 'सिनेमा गर्ल'(1930), 'हंटरवाली'(1936), 'डायमंड क्वीन'(1940), 'अबला की शक्ति'(1940), 'औरत' (1940) और 'मीनाक्षी' (1942) जैसी फिल्मों के नाम दिए जा सकते हैं जिन्होंने स्त्री के प्रति समाज द्वारा बनी बनाई सोच से अलग छवि को सिनेमा में अभिव्यक्त करने की शुरूआत की।"[5]

सन् 1969 में शुरू हुआ नया सिनेमा आंदोलन स्त्री को उसकी समूची मानवीय अपेक्षाओं के साथ प्रस्तुत करता है। 'भुवनशोम'(1969),'मायादर्पण'(1972), 'अंकुर'(1974), 'भूमिका'(1977),'निशांत'(1975),'गर्महवा'(1979),'सुबह'(1981),'अर्थ'(1982),'मंडी'(1983),'बाजार'(1982), 'कलयुग'(1981), 'आरोहन'(1982), 'चक्र' (1981), 'गिद्ध'(1984), 'मिर्च मसाला' (1985) जैसी फिल्मों के माध्यम से फिल्मकारों ने स्त्रियों के जीवन से जुड़े तमाम मुद्दों को सिनेमा का विषय बनाया। कहा जा सकता है कि नया सिनेमा आंदोलन का यही वह समय था जब स्त्री की दुनिया से संबंधित प्रश्न पूरी गंभीरता से हिंदी-सिनेमा के विषय के रूप में स्थापित हुआ। लेकिन यह सुनहरा समय ज्यादा दिनों का नहीं रहा।

---

[5] परवीन फरहत (सं.), सामाजिक मूल्यों से स्त्री का अंतर्द्वंद्व, आजकल, मार्च, 2014, दिल्ली, पृ. 81

भूमंडलीकरण की आहट ने यह सिद्धांत पेश किया कि मुक्त प्रतिद्वंद्विता ही जनतंत्र का आधार है और बाजार ही वह जगह है जहाँ मुक्त प्रतिद्वंद्विता संभव है। इस सिद्धांत को भौतिक उत्पादों के क्षेत्र में ही नहीं सांस्कृतिक-क्षेत्र में भी लागू किया गया। यही कारण है कि इस दौर में अच्छी फिल्मों को प्रोत्साहन देने के लिए उठाए गए सभी कदमों से राज्य ने धीरे-धीरे अपने अपने हाथ खींच लिए, इसलिए जो नया सिनेमा आंदोलन उभरा था वह भूमंडलीकरण के दौर में खत्म हो गया। जिस फिल्म वित्त निगम को जिम्मा सौंपा गया था कि वह अच्छी फिल्मों के निर्माण के लिए अनुदान प्रदान करेगा, वही विदेशी फिल्मों के वितरण के व्यवसाय में लग गया।"[6]

नया सिनेमा आंदोलन के बाद बनने वाली हिंदी-सिनेमा में स्त्री की दुनिया को केंद्रीय विषय के रूप में लेने का फैशन चल पड़ा। ऐसा नहीं है कि इस तरह की फिल्में पहले नहीं बनती थीं। पहले की फिल्मों में स्त्री-जीवन की मुश्किलों और विडंबनाओं को दर्शाते हुए उनके साथ समानता और मानवीय व्यवहार करने पर बल दिया जाता था, जबकि इस समय की फिल्मों में बराबरी और मानवीय-व्यवहार के साथ-साथ उनके सबलीकरण पर अधिक बल है। इन फिल्मों में स्त्री-जीवन से जुड़ी कुछ ऐसी समस्याओं को दिखाया गया है जो शायद इस तरह से इससे पहले इतने तीखे रूप में पर्दे पर नहीं दिखाया गया है। इन फिल्मों में बुर्जुआ और सर्वहारा दोनों वर्ग की स्त्रियों को दिखाया गया है। इसमें उच्चवर्णीय-हिंदू हैं तो दलित -स्त्री भी हैं और धार्मिक अल्पसंख्यक भी। यह अलग बात है कि यहाँ भी वर्चस्व अभिजात स्त्री ओर उसके जीवन की समस्याओं पर ही है। इसका कारण शायद यह है कि इससे फिल्मों में ग्लैमर का प्रवेश आसान हो जाता है। इन फिल्मों में न केवल स्त्री की दुनिया के पारिवारिक और सामाजिक सवालों को उठाया गया बल्कि राजनैतिक सवालों को भी उतनी ही प्रमुखता से स्थान दिया गया। इस दौर की फिल्मों में खास बात यह है कि किसी भी फिल्म में केंद्रीय मुद्दा स्त्री पुरुष प्रेम पर केंद्रित नहीं है। यदि प्रेम कहानी फिल्म में आई है तो वह परंपरागत रूप में प्रस्तुत नहीं की गई है। उनके साथ कई सामाजिक समस्याएं जुड़ी हुई हैं और प्रमुखता उन समस्याओं को दी गई है न कि प्रेम कहानी को।

---

[6] पारख जवरीमल, भूमंडलीकरण और भारतीय सिनेमा, (सं. रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय) पृ. 61

प्रसिद्ध फिल्म-समीक्षक जवरीमल पारख इस दौर की फिल्मों को मोटे तौर पर दो वर्गों में विभाजित किया है। 'एक वे फिल्में जिनमें स्त्री-पुरुष की अनुगामिनी बनकर नहीं जीना चाहती। जिसे अपने स्वतंत्र मनुष्य होने का अहसास है और वह अपनी स्वतंत्रता और अधिकारों के लिए संघर्ष करना चाहती हैं। उदाहरण- 'बैंडिट-क्वीन', 'फायर', 'मृत्युदंड', 'गॉडमदर', 'अस्तित्व', 'जुबैदा', 'क्या कहना', 'लज्जा' आदि। तो दूसरी श्रेणी में वे फिल्में जिनमें स्त्रियाँ पुरुषों के मदद के बिना जीवित रहने के लिए संघर्ष करती हैं। इस संघर्ष में उन्हेंतरह-तरह के मुश्किलों और उत्पीड़नों का सामना करना पड़ता है। उदाहरणस्वरूप 'दामिनी', 'मम्मों', 'सरदारी बेगम', 'हरीभरी', 'चाँदनी बार', 'फिजा' आदि का नाम लिया जा सकता है।'

फिल्म-निर्देशक मधुर भंडारकर का प्रवेश भी इसी दौर में हिंदी-सिनेमा में हुआ था। मधुर नया सिनेमा आंदोलन की कलात्मक पीढ़ी से कलात्मकता और खुली अर्थव्यवस्था तथा पूँजी के प्रवाह से नई तकनीक और भव्यता का समावेश अपनी फिल्मों में करते हैं। वे अपनी फिल्मों में स्त्री की दुनिया को केंद्रीय विषय के बतौर रखते हैं। इन फिल्मों में वे महिलाओं/स्त्रियों को सशक्त भूमिका में तो रखते हैं किंतु ऐसा नहीं कहा जा सकता कि उनकी फिल्मों की नायिकाएँ पुरुषवादी चेतना के विरुद्ध एक स्त्रीवादी चेतना की नयिकाएँ हैं। मधुर की फिल्मों में स्त्री को निम्नलिखित एक प्रकार से प्रस्तुत किया/देखा जा सकता है-

- उनकी फिल्मों के मुख्य नायिकाओं के सहकलाकार में LGBT (Lesbian, Gay, Bisexual and Transgender) समुदाय से किसी सदस्य को जरूर लिया जाता है।

- उनकी फिल्मों के कार्यक्षेत्र में स्त्रियों की उपस्थिति और पितृसत्तात्मक-मूल्यों तथा नजरियों से संघर्ष का बारीकी से प्रस्तुतीकरण होता है।

- वे नायिका के संघर्ष को प्रतीकात्मक रूप से नारी छवि में ही प्रस्तुतीकरण करते हैं।

मधुर, सिनेमा जगत या कहें कि समाज में विमर्शों को जन्म देने वाली सिस्टम (निकाय) के पीछे के यथार्थजीवन को निरूपित करते हैं। इसके साथ ही विमर्श ("मूलत: सामाजिक ज्ञान व्यवस्था से मजबूती से जुड़ा हुआ क्षेत्र है जिसके अंतर्गत संसार को जाना जाता है। मूल विशेषता यह कि इसमें संसार वही नहीं होता बल्कि यह वह संसार है जिसके अस्तित्व को स्वयं विमर्शों द्वारा लाया जाता है। यह चिन्हों व्यवहारों व प्रतीकों का एक जटिल समुच्चय है जो सामाजिक अस्तित्व और सामाजिक उत्पादन को व्यवस्थित करता है।"[7]) बनाने वाले सिस्टम के अंदर के जीवन और उसके कल्पना-लोक (स्वप्न-लोक) के द्वंद्व को प्रस्तुत करने का दुरूह प्रयास करते हैं। विमर्श-निर्मिति के सिस्टम के अंतर्गत किसी नायिका की जिंदगी को दर्शाना आम जीवन यथार्थ को दर्शाना तो नहीं किंतु नायिका के किरदार के प्रभाव समाज में आम जीवन को प्रभावित ही नहीं अपितु उसे एक हद तक संचालित करता है ऐसे में उस नायिका के निजी जीवन की प्रस्तुति ग्लैमर और त्रासदी के बहुत उच्चतर तनाव को रचता है।[8] । इसे 'पेज थ्री', 'फैशन' तथा 'हीरोइन' फिल्मों के उदाहरण से समझा जा सकता है।

प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध के लिए चयनित फिल्मों (मधुर भंडारकर द्वारा निर्देशित) का संदेश इस प्रकार से हमें प्राप्त होता है-

चाँदनी बार- जिस वर्ग की महिलाओं को इस फिल्म के केंद्र में रखा गया है उनके लिए इस फिल्म का अंत काफी निराशाजनक है। फिल्मकार का संदेश साफ है कि चाहे बार गर्ल्स जो भी कर ले, कितना भी संघर्ष कर ले उनकी स्थिति वही बनी रहेगी।

सत्ता- राजनीति का मतलब यह नहीं है कि सत्ता आपके ही के पास हो बल्कि राजनीति का हिस्सा होने का मतलब है समाज में सकारात्मक परिवर्तन में आपके सहयोग से। यहाँ यह भी स्पष्ट है कि एक स्त्री जिंदगी में जो हासिल करना चाहे कर सकती है भले ही उसे इस पितृसत्तामक-समाज में पुरुषों जैसे ही व्यवहार क्यूँ न करना पड़े।

---

[7] सिंह, सत्यम कुमार, नव-राजनैतिक विमर्श और अहिंसा दृष्टि, पी-एच.डी; शोध-प्रबंध, म.गां.अं.हि.वि.वि., वर्धा, 2006, पृ. 03

पेज थ्री- लड़कियों/स्त्रियों की किचेन अथवा बेडरूम से बाहर की दुनिया तुम्हारे लिए नहीं है। इससे बाहर निकलने की कोशिश भी मत करना वरना तुम्हारे साथ कुछ न कुछ बुरा अवश्य होगा।

कॉरपोरेट- कॉरपोरेट वर्ल्ड में स्त्रियाँ, पुरुषों की बराबरी करने की कोशिश न करें नहीं तो उनका हश्र भी निशीगंधा के समान ही होगा।

फैशन- फैशन वर्ल्ड में भी एक स्त्री को अपने सपने पूरा करने के लिए पुरुषों के सामने अपने घुटने टेकने होते हैं किंतु यदि स्त्री चाहे तो तमाम संघर्षों के बाद भी सर्वोच्च स्थान पर पहुँच सकती है। जहाँ उसकी वाहवाही न चाहते हुए भी, बेमन ही सही लोग करेंगे।

हीरोइन – चूँकि तुम लड़की हो/स्त्री हो इसलिए तुम बुरी हो और इसलिए तुम्हारी नियति है कष्ट झेलना।

चयनित फिल्मों के अध्ययन एवं विश्लेषण (नारीवादी-दृष्टिकोण) से प्राप्त उपरोक्त संदेशों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मधुर अपनी फिल्मों में- स्त्री-जीवन की वास्तविकताओं, उसके मनोभाव, आकांक्षाओं तथा दोहरे शोषण को सही परिप्रेक्ष्य में नहीं दिखा पाते हैं परिणामस्वरूप उनकी फिल्मों से पुरुष-श्रेष्ठता की धारणा को बल प्रदान होता है और स्त्री को दोयम दर्जे का नागरिक बनाए रखने की समाज की कोशिश को सहयोग मिलता है।

- मधुर अपनी फिल्मों के माध्यम से स्त्री की रूढ़ छवि (stereotype image) को तोड़ते हैं, किंतु बहुत चालाकी से अपनी फिल्मों के अंत:आख्यान में यह भी ढिढोरा पीटते हैं कि रूढ़ छवि से अलग छवि (non-stereotype image) स्त्रियों के लिए खतरनाक है। दरअसल वो इस प्रयास में खुद एक नए किस्म की रूढ़ छवि को प्रोड्यूस करने लगते हैं। जैसे- उनकी अधिकांश सशक्त नायिका

अपने प्रोफेशन में मॉडल, हिरोइन या इसी तरह की महिलाएँ हैं जिन्हें समाज इसी प्रकार देखता है।

- हिंदी-सिनेमा ने जिस तरह से आज तक स्त्रियों के चित्रण को जो प्रतिमान (paradigm) गढ़ा था वही प्रतिमान मधुर भी अपनी फिल्मों में गढ़ते हैं। उनके प्रतिमान में कोई विचलन नहीं दिखाई देता।

- रैडिकल फैमिनिस्टों ने स्त्री की जो छवि गढ़ी है ठीक उसी के आसपास मधुर भी अपनी नायिकाओं का चित्रण करते हैं किंतु उनकी फिल्मों के अंत:आख्यान में स्त्री को उत्पाद (commodity) के रूप में परोसने की कोशिश भी साफ दिखती है।

- मधुर भंडारकर भी ऐसा लगता है कि सिनेमा के मुख्य द्वंद्व (उसके व्यवसाय होने और कला होने) के बीच में फंसकर, दबाव में हैं और स्त्री को एक उत्पाद (commodity) के रूप में ही परोस रहे हैं चाहे वह परोक्ष रूप में ही हो।

परिशिष्ट

स्त्री की दुनियां को केंद्र में रखकर बनाई गई हिंदी फिल्मोंकी सूची

1913	राजा हरिश्चन्द्र
1923	सावित्री - (मूक फिल्म)
1924	कन्या विक्रय – (मूक फिल्म)
1925	देवदासी – (मूक फिल्म)
1927	गुणसुंदरी
1931	द्रौपदी, देवी देवयानी, नूरजहां
1932	सती सोने, राधा रानी
1933	राजरानी मीरा, यहूदी की लड़की, मिस 1933
1934	गुणसुंदरी
1935	हंटरवाली, देवदास, कीमती आँसू
1936	डेक्कन कवीन, अछूत कन्या, अमरज्योति
1937	दुनियाँ ना माने
1939	अधूरी कहानी, आदमी
1940	औरत, डायमंड क्वीन
1941	चित्रलेखा, राजनर्तकी, चरणों की दासी, गुड़िया
1942	मिनाक्षी, मोटरवाली
1943	शकुंतला
1944	रतन
1945	मैं अबला नहीं हूँ, मीरा
1946	सुभद्रा
1947	नीलकमल
1948	स्वयंसिद्धा, चंद्रलेखा, कल्पना
1949	महल, एक थी लड़की, बरसात, अंदाज
1950	दहेज, जोगन
1951	आवारा
1953	परिणीता, अनारकली, दायरा, झांसी की रानी

1954	नागिन, बिराज बहू
1955	महासती सावित्री, सीमा, श्री 420
1956	जागते रहो
1957	मदर इंडिया, मिस इंडिया, शारदा, भाभी, मिस मेरी, आशा, कठपुतली, प्यासा
1958	दुल्हन, साधना, सोने की चिड़िया
1959	सुजाता, धूल का फूल, छोटी बहन, कागज के फूल
1960	दिल अपना और प्रीत पराई, चौदहवीं का चांद, घूंघट, अनुराधा
1961	कांच की गुड़िया, स्त्री, मेम दीदी, भाभी की चूड़ियां, मेरे महबूब
1962	साहब, बीबी और गुलाम, मैं चुप रहूंगी, आरती, अनपढ़
1963	बंदिनी
1964	मैं सुहागन हूँ, चित्रलेखा, जहांआरा
1965	काजल, गाईड
1966	ममता, अनुपमा, तीसरी कसम
1967	बहू-बेगम
1968	सरस्वती चंद्र
1969	परिणीता, भुवनशोम
1970	चेतना, देवी, पूरब और पश्चिम
1971	गुड्डी, हरे रामा हरे कृष्णा
1972	सीता और गीता, पाकीजा, मायादर्पण
1973	अभिमान, सौदागर, आविष्कार, गर्म हवा, जंजीर
1974	आंधी, चरित्रहीन, अंकुर
1975	जय संतोषी माँ, जूली, मौसम, निशांत, शोले
1976	भूमिका, संकोच
1977	स्वामी, भूमिका
1978	घर, मैं तुलसी तेरे आंगन की
1979	एक बार फिर, दूरियां, नूरी, स्पर्श, गृहप्रवेश
1980	चक्र, इंसाफ का तराजू, मांग भरो सजना, कुर्बानी
1981	सुबह, 36 चौरंगी लेन, उत्सव, उमराव जान, श्रद्धांजलि, क्रांति, कलयुग, चक्र
1982	बाजार, निकाह, अर्थ, मासूम, चश्मेबद्दूर, आरोहन

1983	रजिया सुल्तान, मंडी, गिद्ध
1985	तवायफ, राम तेरी गंगा मैली, परमा, मिर्चमसाला
1986	इक पल, अंजुमन
1987	महायात्रा, इज़ाजत, पंचवटी, प्रतिघात
1988	रिहाई, खून भरी मांग, पति परमेश्वर, कयामत से कयामत तक, जख्मी औरत, शेरनी
1989	मिर्च मसाला, सिद्धेश्वरी चांदनी
1990	दृष्टि, लेकिन, दिशा, थोड़ा-सा रुमानी हो जाएं, दिल
1991	हीना, फूल बने अंगारे, लम्हें, लिबास
1992	ये नजदीकियां, रोजा, सूरज का सातवां घोड़ा
1993	दामिनी, माया मेमसाहब, रुदाली
1994	बैंडिट क्वीन, 1942 ए लव स्टोरी, मम्मो, हम आपके हैं कौन
1995	रंगीला, नसीम, बॉम्बे, दिलवाले दुलहनियाँ ले जाएंगे
1996	फायर
1997	मृत्युदंड, दायरा, हम दिल दे चुके सनम, परदेस, आस्था
1998	फायर, मुक्ति, हजार चौरासी की मां, जख्मी औरत, 1947 अर्थ
1999	गॉड मदर, ताल, हम साथ साथ हैं, गॉडमदर
2000	अस्तित्व, क्या कहना, फिजा
2001	लज्जा, चाँदनी बार
2002	मिस्टर एंड मिसेज अय्यर, लिला
2003	मातृभूमि, सत्ता
2005	परिणीता, पेज थ्री, 2006 – कारपोरेट
2007	जोधा अकबर, चीनी कम
2008	फैशन, आजा नच ले
2012	हीरोइन

संदर्भ ग्रंथ-सूची

हिंदी ग्रंथ

1. अग्रवाल प्रहलाद (संपादक); हिंदी सिनेमा बीसवीं से इक्कीसवीं सदी तक, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2009
2. अमरनाथ- हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2009
3. ओझा अनुपम ; भारतीय सिने सिद्धांत, राधाकृष्ण, नई दिल्ली, 2002
4. कक्कड़ सुधीर, अंतरंगता का स्वप्न: भारतीय समाज में प्रेम और सेक्स, अनु. अभय कु. दुबे, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2007
5. कुमार अरुण ; सिनेमा और हिन्दी सिनेमा, राजस्थान पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2007
6. कोरे सुलमा, नारी केंद्रित हिंदी सिनेमा में भारतीय स्त्री (शोध प्रबंध), श्रीमती नाथीबाई दामोदर ठाकरसी महिला विश्वविद्यालय, मुंबई, 2011
7. चड्ढा मनमोहन; हिंदी सिनेमा का इतिहास, सचिन प्रकाशन, दिल्ली, 1990
8. जोशी ललित- बालीबुड पाठ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2012
9. दुबे विवेक ; हिन्दी साहित्य और सिनेमा, संजय प्रकाशन, दिल्ली 2009
10. पारख जवरीमल ; जनसंचार के सामाजिक संदर्भ, अनामिका पब्लिसर्स, नई दिल्ली,2009
11. पारख जवरीमल ; जनसंचार माध्यमों के वैचारिक परिप्रेक्ष, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली,2002
12. पारख जवरीमल ; जनसंचार माध्यमों के सामाजिक चरित्र, अनामिका पब्लिसर्स, नई दिल्ली,2004
13. पारख जवरीमल ; लोकप्रिय सिनेमा और सामाजिक यथार्थ, अनामिका पब्लिसर्स, नई दिल्ली 2001
14. पारख जवरीमल ; संस्कृति और समीक्षा के सवाल, अनामिका पब्लिसर्स, नई दिल्ली,2000
15. पारख जवरीमल ; हिन्दी सिनेमा का समाज शास्त्र, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली 2006
16. भारतीय सिनेमा का सफरनामा, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, 2013.
17. माथुर श्याम ; सिने- पत्रकारिता , राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर 2008
18. मृत्युंजय (संपादक) हिन्दी सिनेमा का सच, समकालीन सृजन कलकत्ता,1997
19. मृत्युंजय (संपादक); सिनेमा के सौ बरस, शिल्पायन, दिल्ली, 2008
20. राव भास्कर सी, समकालीन हिंदी सिनेमा, कल्पना प्रकाशन, दिल्ली, 2012
21. सव्यसाची ; हिन्दी फिल्में, युगांतर प्रकशन, मथुरा,1984
22. साहनी बलराज ; सिनेमा और स्टेज, आत्माराम एंड संस, दिल्ली, 1974
23. मेकडोगल जॉयस, थिएटर्स ऑव दि माइंड, बेसिक बुक्स, न्यूर्याक, 1986

अँग्रेजी ग्रंथ

24. B. Ruby Rich, 'In The Name Of Feminist Film Criticism", Patricia Erens (ed) Issues In Feminist Film Criticism, Indiana University Press, 1990
25. Bazin Andre,Gray Hugh(Trans.);What Is Cinema?(volume1+2), University of California Press,London,2005.
26. Benett Peter, Hickman Andrew and Wall Peter; Film Studies the essential resource, Routledge, London, 2007.
27. Bord Well David, Thompson Kristin; Film Art An Introduction, Mc-Graw Higher Education, Boston, 2006.
28. Bresson Robert; Notes On Cinematography,Urizen Book,New York
29. Chakravarty Sumita; National Identity in Indian popular cinema (1947-1987), University of Texas Press, Austin, 1993
30. Chatterji Shoma A.; Cinema, Object: Woman: A Study Of The Portrayal Of Woman In Indian Cinema, Parumita Publications, Calcutta, 1998
31. Choudhari Shohni; Feminist Film Theorist, Rutledge, London, 2006
32. Christopher Pinney, Photo Of The Gods: The Printed Image And Political Struggle In India, Oxford University Press, New Delhi, 2004
33. De Lauritis Teresa, Technologies of genders: essays on theory, film and fiction, Indiana University Press, Bloomington, 1987
34. Eleftheriotis Dimitris and Needham (editor); Asian cinema a reader and guide, Edinburg University Press, 2006.
35. Furstenau (editor); The Film Theory Reader Debates and Arguments, Routledge, London, 2010.
36. Gains Taine, White privilege and looking relations: race and gender in feminist film theory, in E. Ann. Kaplan (ed.), Feminism and film, Oxford University Press, Oxford, 2000
37. Gupta Das Chidanand, Form & Content In Frames Of Mind, Reflections On Indian Cinema, (Ed), Aruna Vasudev, UBSPD, New Delhi, 1995

38. Hill John, Gibson church Pamela (editor); The oxford guide to film studies, Oxford University Press, New York, 1998.
39. Jain Jasbir, Rai Sudha (ed. Rai Sudha); Films and feminism: Essays in the Indian cinema, Rawod publications, Jaipur
40. Johnston Clair, Towards a Feminist Film Practice: some thesis, in Bill Nicholls, Movies and Methods,
41. Johnston Clair, Women's cinema as counter cinema in E.Ann Kaplan (ed.)
42. Kakkar Sudhir; Cinema is collective fantasy, ed. Vasudev Aruna and Lenglet Phillipe, Vikas Publishing House, New Delhi, 1983
43. Krishnaraj Maithreyi (editor); Discussion on the film earth, Women studies in India Perspective
44. Mary Ann Doan, Femme Fatales: Feminism, Film Theory Psychoanalysis, Routledge, New Delhi, 19
45. Monaco James; How to read a film, Oxford University Press, New York, 1981.
46. Monteith Sharon,Jancovich Mark,Grainge Paul;Film Histories an Introduction and Reader, Edinburg University Press, 2007.
47. Mulvey Laura, Visual Pleasure And Narretive, Cinema, In Bill Nicholl (ed) Movies And Methods, Vol.2 University Of California Press, Aarkersely, 1985
48. Roberge Gaston; The Subject of Cinema,Seagull,Cullcutta, 2005.
49. Saari Anil; Hindi Cinema : An Insider's View, Oxford University Press, 2009.
50. Selverman Kaja, The Acoustic Mirror: The female voice in psychoanalysis and cinema, Indiana University Press, Bloomington, 1988
51. Smelik Anneke; And The Mirror Cracked : Feminist Cinema And Film Theory, Routledge, London
52. Smith Nowell Geoffery;The Oxford History of World Cinema, Oxford University Press, New York, 1997.

53. Somaaya Bhawana, Kothari Jigna, Madangarli Supriya; Mother Maiden Mistress: Women in Hindi Cinema, 1950-2010, Harper Collins, India, Delhi, p. 203
54. Sontag Susan; On Photography, Rosetta Book, New York.
55. Stam Robert; Film Theory an Introduction,Blackwell,USA, 2000.
56. Thornham Sue; Feminist Film Theory: A Reader, Edinburg University Press,
57. Vasudevan Ravi; The Melodramatic Public : Film Form And Spectatorship In Indian Cinema, Permanent Black, New Delhi, 2010.
58. Vollmer Olrike; Seeing Film and Reading Feminist Theology, Macmillan, London, 2000
59. William Linda, Mallencamp, Doane Arn Marry; Revision In Feminist Film Criticism, University Publication Of America, 1984.

हिंदी पत्र-पत्रिकाएँ

1. कुमार कौशल, 'श्याम बेनेगल कला की जीवनधर्मिता का हिमायती', समसामयिक सृजन, अक्टूबर-मार्च, 2012-13
2. टैगोर शर्मिला: रिप्रेजेंटेशन ऑफ वीमेन इन इंडियन सिनेमा एंड बियोंड, समयांतर, जनवरी, 2014
3. परवीन फरहत (सं.), सामाजिक मूल्यों से स्त्री का अंर्तद्वंद्व आजकल, मार्च, 2014, दिल्ली
4. पारख जवरीमल, भूमंडलीकरण और भारतीय सिनेमा, (सं. रमेश उपाध्याय, संज्ञा उपाध्याय) कथन.
5. प्रजापति महेंद्र (संपा.), समसामयिक सृजन, अक्टूबर-मार्च (12-13), संयुक्तांक, दिल्ली

अँग्रेजी पत्र-पत्रिकाएँ

1. Arunima G, Face Value: Ravi Varma's Portraiture And The Project Of Colonial Modernity, The Indian Economic And Social History Review 40, 1, 2003
2. Iqbal Masud; Genesis of Indian Popular Cinema- Early Period, Cinema in India, Jan-Mar, 1987
3. Masud Iqbal; Religion, Romance and Revolt, Cinema in India, Apr-Jun 1987
4. Masud Iqbal; The city: paradise and inferno: Cinema in India, Jul-Sep. 1987, Vol I, No. 03
5. Mishra Amresh, The Girl nex door: Icon is a changing contact; geep focus, vol. III, no. 4 1991

विडियो फिल्म/इंटरव्यू

1. From Kamlabai, Video documentary by Reena Mohan, 1992
2. GuftGu With Madhur Bhandarkarhttps://www.youtube.com/watch?v=WUchEw5FKts

3. Madhur Bhandarkar Interview
https://www.youtube.com/watch?v=893XKGCkpP0

ब्लॉग / इन्टरनेट

1. http://en.wikipedia.org/wiki/Madhur_Bhandarkar
2. http://madhurbhandarkar.net/#/WELCOME (official website)
3. http://www.imdb.com/name/nm1055105/
4. Sanjukta.wordpress.com/2012/09/22/feminist-film-review
5. www.indiatodey.intoday.in/story/heroine-moviereview/1/221705.html
6. www.pitsnews.com/2013/02/25 कोठी-की-तवायफ-से-लेकर-चाँद